

महाकवि पृथ्वीराज राठौड़ एवं उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति वेलि क्रिसन रुक्मणी री



रणजीत सिंह पँवार

शोधार्थी, राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

राजस्थान के इतिहास एवं साहित्य में अनेक कवियों, लेखकों, साहित्यकारों एवं इतिहासकारों आदि के नाम अविस्मरणीय हैं। राजस्थानी साहित्य को शीर्ष तक ले जाने में इनकी कलम या लेखनी का योगदान सदैव अतुलनीय है। राजस्थान के इन मूर्धन्य इतिहासकारों एवं साहित्यकारों में महाराजा पृथ्वीराज राठौड़ का नाम सदैव चिरस्मरणीय रहेगा। यह एक भक्त, वीर और कवि होने के साथ-साथ अनेक विषयों पर भी अपना वर्चस्व रखते थे। इतिहास एवं साहित्य जगत में पीथल के नाम से प्रसिद्ध पृथ्वीराज राठौड़ ने अनेक कृतियों की रचना की थी। जिनमें भक्ति, श्रृंगार, वीरता, ममता, अध्यात्म आदि की झलक देखने को मिलती है। राठौड़ द्वारा रचित कृतियों में सर्वश्रेष्ठ कृति 'क्रिसन रुक्मणी री वेलि' है और इसी काव्य के कारण पृथ्वीराज की एक श्रेष्ठ कवि के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त है। राजस्थानी साहित्य में जो वेलि काव्य की परम्परा चली, उसमें पृथ्वीराज राठौड़ कृत 'वेलि क्रिसन रुक्मणी री' खण्ड काव्य न केवल डिंगल साहित्य की वरन् हिन्दी साहित्य की भी एक उत्कृष्टतम रचना है। वेलि कृष्ण रुक्मिणी री में रुक्मणी एवं श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कवि ने शिशुपाल, बलराम, रुक्म, कृष्ण परिवार, रुक्मिणी परिवार, श्रृंगार रस, प्रकृति चित्रण, ऋतु वर्णन आदि का बड़े ही मनोहारी रूप से वर्णन किया है। इसमें मध्यकालीन समाज, संस्कृति, लोकाचार, और शिष्टाचार की अमूल्य सामग्री निहित है। भक्ति, श्रृंगार तथा वीरता के सुन्दर समन्वय के साथ-साथ कला पक्ष का पूर्ण रूप निर्वाह और भाव सौन्दर्य की चरम परिणिति ही इस काव्य की प्रधान विशेषता है।

राजस्थान के इतिहास एवं साहित्य में अनेक कवियों, लेखकों, साहित्यकारों एवं इतिहासकारों आदि के नाम अविस्मरणीय हैं। इतिहास एवं साहित्य की स्मृति को चिरकाल तक बनाए रखने के लिए राजस्थान के अनेक विद्वानों ने अपनी रचनाओं का निर्माण कर इसमें योगदान दिया है। राजस्थानी साहित्य को शीर्ष तक ले जाने में इनकी कलम या लेखनी का योगदान सदैव अतुलनीय है। लेकिन यह अतुलनीय योगदान तभी जीवित रहेगा जबकि इसे निरन्तर अध्ययन, अध्यापन, वाचन, व्याख्या, अनुशीलन, समीक्षा जैसी आदि शोध की विधाओं से पुनर्व्याख्यायित किया जाता रहे।

यह तो स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि मनुष्य जहाँ जन्म लेता है उसे उस भूमि व मातृभाषा से असीम प्रेम होता है और वह इसका अनुभव अपनी रग-रग में करता है। राजस्थान के सन्दर्भ में अनेक मूर्धन्य विद्वान ऐसे हुए हैं जिन्होंने अपनी जन्मभूमि से अपार प्रेम व श्रद्धा थी। इन्हीं मूर्धन्यों में महाराजा पृथ्वीराज राठौड़ का नाम सदैव चिरस्मरणीय रहेगा। पृथ्वीराज राठौड़ इस मरुभूमि की उपज

थे और उन्हें अपनी मातृभाषा राजस्थानी के वर्ण-वर्ण से अतिशय प्रेम व अनुराग था। वे इस प्रदेश के सच्चे प्रतिनिधि थे जिनका कोई सानी नहीं था। इनके एक हाथ में जन रक्षार्थ खड्ग थी तो दूसरे हाथ में कल्याणार्थ लेखनी।

राजस्थान के इतिहास में 'पीथल' एवं 'प्रीथीराज' के नाम से जाने जाने वाले पृथ्वीराज, राठौड़ वंश के मूल पुरुष राव सीहा के वंशजों में से थे। राव सीहाजी के वंशज व बीकानेर राजवंश के संस्थापक राव बीका की चौथी पीढ़ी में कवि पीथल हुए थे। ये राव जैतसी के पोते थे और इनके पिता राव कल्याणमल अकबर के समकालीन थे। कल्याणमल के 11 पुत्रों में से तीसरे स्थान पर प्री-थीराज थे। इनकी माता का नाम भगतादेवी सोनगरी (भक्तिमती) था जो कि अखैराज सोनगरी की पुत्री थी।

राजस्थान के इस महाकवि का जन्म बीकानेर रियासत में ही मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपदा, संवत् 1606 को हुआ।¹ पृथ्वीराज आरंभ से ही बीकानेर राजवंश के ऐश्वर्य व विलास में पले पड़े थे लेकिन उनके बहुमुखी व्यक्तित्व का परिचय, इनकी कृष्ण भक्ति,

काव्य कल्पना एवं शक्ति, वीरता, बुद्धिमत्ता प्रस्तुत कर देती है। राव कल्याणमल के प्रतिभासम्पन्न व सुयोग्य पुत्र बाल्यकाल से ही साधुओं से सत्संग करते थे और इसी उद्देश्य से सर्वप्रथम गोकुल व मथुरा की यात्रा की।

दयालदास कृत 'आर्याख्यान कल्पद्रुम' में पृथ्वीराज के तीन गुरुओं का उल्लेख किया गया है जो कि निम्नलिखित पंक्तियों से ज्ञात होता है -

‘दीक्षा गुरु विठलेश है, गुरु गदाधर व्यास।

चतराई गुरु रामसिंह, तीनों गुरु पृथुदास।।’²

इनके विवाह के संबंध में विद्वानों एवं इतिहासकारों में कुछ वाद प्रचलित हैं। कोई इनके दो विवाह होना बताते हैं तो कोई तीन विवाह होना बताते हैं। डॉ. हीरालाल माहेश्वरी ने अपने ग्रंथ 'राजस्थानी साहित्य' में पृथ्वीराज के तीन विवाह होना बताया है जबकि कुछ विद्वान इसकी संख्या दो बताते हैं। जैसलमेर के रावल हरराज की प्रथम पुत्री लालादे और चापादे के अतिरिक्त मेवाड के महाराणा उदयसिंह की पुत्री किरणादे (किरणवती)से साथ भी पीथल का विवाह हुआ था, ऐसा मत कुछ इतिहासकारों में प्रचलित है। कर्नल टॉड ने अपने ग्रन्थ एनल्स एण्ड एण्टीक्यूटिज में इस बात का वर्णन किया है।

पृथ्वीराज राठौड़ एक अदम्य वीर एवं स्वाभिमानी पुरुष थे। पृथ्वीराज मुगल सम्राट अकबर के कृपापात्र थे। इन्होंने अकबर की सेवा में रहते हुए भी अपना स्वाभिमान एवं स्वराष्ट्राभिमान को सदैव प्राथमिकता पर रखा। एक बार अकबर द्वारा महाराणा प्रताप के पत्र को सुनकर (महाराणा प्रताप द्वारा अकबर को लिखा गया) इस वीर प्रसवा भूमि के लाल का जातीय गौरव एवं राष्ट्रभिमान उबल पड़ा और उन्होंने महाराणा प्रताप को अत्यन्त उत्तेजित पत्र लिखा। पृथ्वीराज ने अकबर की भयभीत मनःस्थिति को लक्ष्य करके ये दोहा लिखा जो इतिहास एवं साहित्य में विशिष्ट स्थान रखता है -

माई अहड़ा पूत जण, जहड़ा राण प्रताप,

अकबर सूतो ओझके, जाण सिराणे सांप।

अर्थ - हे माँ! पुत्र उत्पन्न करो तो ऐसा करो कि जैसे राणा प्रताप, जिनसे आतंकित होकर अकबर रात को सोते हुए भी ऐसे चमकता है जैसे सिरहाने सांप के आ जाने से लोग चमकते हैं।³

वीर भोग्या वसुंधरा पर ऐसे कुलीन क्षत्रिय, वीर, स्वाभिमानी पुरुष का होना आत्मगौरव की बात है। यह एक भक्त, वीर और कवि होने के साथ-साथ अनेक विषयों पर भी अपना

वर्चस्व रखते थे। काव्य शास्त्र, व्याकरण, कृषि, वैद्यक, ज्योतिष, संगीत आदि की जानकारी इनकी कृतियों में देखने को मिलती है। इसीलिये पृथ्वीराज राठौड़ के लिए 'भूतो न भविष्यति' का उल्लेख करना अतिशयोक्ति नहीं होगा।

मरु माता के इस वीर एवं भक्त पुत्र ने संवत् 1657 में अपना शरीर त्यागा। इनकी मृत्यु के कारण अकबर को भारी आघात लगा और उन्होंने पीथल के बारे में कहा कि -

पीथल सों मजलिस गई, तानसेन सों राग।

रीझ बोल हंस खेलबो, गयो बीरबल साथ।

पीथल की सर्वश्रेष्ठ कृति : 'वेलि क्रिसन रूक्मिणी री'

इतिहास एवं साहित्य जगत में पीथल के नाम से प्रसिद्ध पृथ्वीराज राठौड़ ने अनेक कृतियों की रचना की थी। जिनमें भक्ति, श्रृंगार, वीरता, ममता, अध्यात्म आदि की झलक देखने को मिलती है। राठौड़ द्वारा रचित कृतियों में सर्वश्रेष्ठ कृति 'क्रिसन रुक्मिणी री वेलि' है और इसी काव्य के कारण पृथ्वीराज की एक श्रेष्ठ कवि के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त है। इसके अतिरिक्त कवि द्वारा रचित अन्य प्रमुख रचनाएं 'दसरथदेवउत रा दूहा', 'दसमभागवत रा दूहा', 'गंगालहरी', 'वसदेरावउत', 'देवी स्तुति', 'वल्लभदेवउत (विट्ठळ) रा दूहा', 'प्रताप प्रशस्ति' आदि हैं। राजस्थानी साहित्य में जो वेलि काव्य की परम्परा चली, उसमें पृथ्वीराज राठौड़ कृत 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री' खण्ड काव्य न केवल डिंगल साहित्य की वरन् हिन्दी साहित्य की भी एक उत्कृष्टतम रचना है। यह वेलि भक्तजनों के लिए 'मुगती तणी नीसरणी', 'सरस्वती की कंठश्री' और रसिकों हेतु 'रसमय' है।⁴ कहीं इसे 'अमृत वल्ली' कहकर अमृत की तरह फलवती, कहीं गुणवेलि कहकर भगवान के गुण कीर्तन की अक्षय निधि और कहीं मंगल कहकर सर्वकामनाओं को पूर्ण करने वाली बताया गया है। प्रमुख भाषाशास्त्री डॉ. टैस्सीटोरी ने उसे डिंगल के समृद्ध साहित्य भंडार का सबसे जगमगाता रत्न कहते हुए यह पंक्तियां उसके बारे में कही हैं -

"This Veli of Kirsna and Rkmni by Rathora Prithiraja of Bikaner, is one of the most fulgent gems in the rich mine of the Rajasthan Literature"⁵

यह वेलि श्रृंगार, वीर और भक्ति भाव की रूपी सुन्दर त्रिवेणी है। पृथ्वीराज राठौड़ कृत इस वेलि को दुरसा आढ़ा ने पांचवां वेद और उन्नीसवां पुराण कहा है -

रूक्मिणी गुण लखण रूप गुण रचवण, वेलि तास कुम करइ बखावण?

पांचमउ वेद भाखियउ पीथल, पुणियउ उगणीसमउ पुराण।

कृति के नाम की सार्थकता

वेलि नामकरण का मूल तो निश्चय ही वाङ्मय को एक विराट उद्यान मान, ग्रन्थों को उसके वृक्ष तथा वृक्षांग वाची नाम से पुकारने की प्राचीन परिपाटी में ही निहित है। जैसे कठोपनिषद् में दो अध्याय व छह वल्लियां हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् में शिक्षा वल्ली, ब्राह्मणानन्द वल्ली, भृगु वल्ली नामक तीन प्रपाठक हैं। इसी आधार पर वल्लरी, वेलि और वेल, संज्ञक रचनाएं नामांकित हैं।⁶

वेलि को संस्कृत साहित्य में वल्लरी, लता, लतिका की संज्ञा दी गई है। स्वयं पृथ्वीराज ने भी वेलि को 'लता' के रूप में ही माना है और श्रीकृष्ण की यशगाथा की लता का पल्लवन, पुष्पवन और प्रसारण होते देखना ही उनका ध्येय रहा है। इस रचना को वेलि नाम की संज्ञा देने का कारण निम्नलिखित छंद (संख्या 291) में निहित दिखायी पड़ता है -

वल्ली तसु बीज भागवत वायौ, महि थाणौ प्रिथुदास मुख।
मूळ ताल जड़, अरथ मण्डहे, सुथिर करणि चदि छाँह सुख।।291।।

अर्थ - इस वेलि (लता) का बीज भागवत है। दास पृथ्वीराज के मुख रूपी थाँवले (पौधे का मूल स्थान) में यह बीज बोया गया है। इसका मूल पाठ ही मानो वृक्ष की डालियाँ हैं तथा इसका अर्थ मानों जड़ें हैं। इस वेलि रूपी लता को सुनने वालों के कान मंडप हैं, जिनके ऊपर यह चढ़ी रहती है और सुख ही इसकी छाया है।

उपरोक्त छन्द से स्पष्ट होता है कि पृथ्वीराज का वेलि से अर्थ वैष्णव धर्म की उस लता से है जो भागवद् धर्म के रूप में निरन्तर बढ़ती रहेगी और श्रोतागण इसको सुनकर सुख की प्राप्ति करते हैं। इसीलिए इसे 'मुगती तणी नीसरणी' की संज्ञा भी दी गई है। चूँकि वेद, पुराणों, उपनिषदों आदि में श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया है और विष्णु के अवतारों की भक्ति करने वाले, उनका बखान करने वाले, इस मत में विश्वास रखने वाले वैष्णव धर्म के ही अनुनायी रहे हैं।

कृति का रचना काल

वेलि की रचना काल को लेकर कतिपय विद्वानों में मतभेद नजर आते हैं। डॉ. एल.पी.तेस्सीतोरि ने वेलि का रचनाकाल सम्बत् 1637 माना है और इसका संपादन करते समय उन्होंने रचनाकाल संबंधी निम्न पद्य को मान्यता दी है -

वरसि अचळ गुण अंग ससी संवति, तवियौ जसकरि स्त्री भरतार।

करि स्रवणै दिन राति कंठि करि, पासै स्त्रीफल भगति अपार।।

इसके अनुसार संवत् 1637 ही रचना संवत् ठहरता है। लेकिन तेस्सीतोरि द्वारा संपादित 'वेलि क्रिसन रूक्मिणी री' के प्रकाशन के बाद कुछ प्रतिलिपियों में रचना से संबंधित दूसरे ही सन् का उल्लेख है जिनमें सम्बत् 1636, 1638, 1644 आदि हैं। इन सब के आधार पर वेलि का रचनाकाल 1636 से 1644 के बीच माना जा सकता है। पर तेस्सीतोरि द्वारा अपने संपादन में जिन प्रतियों के पाठान्तर उद्धृत किए गए हैं, उन सभी में रचनाकाल विषयक वही छन्द है, जिसमें 1637 विक्रम का उल्लेख है। इसलिए अधिकांश विद्वानों ने 1637 को ही सही रचना संवत् माना है। इसके पीछे कुछ तर्क यह भी है कि बीकानेर राजवंश के अपने ग्रन्थागार की प्रतियाँ निश्चय ही अधिक विश्वसनीय होनी चाहिए।⁷ लेकिन इन रचनाकाल के इन मतभेदों के चलते किसी एक संवत् को निश्चित नहीं माना जा सकता है। उपर्युक्त संवत्तों के आधार पर अभी यही कहा जा सकता है कि इस कृति की रचना सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई होगी। इस पर अभी और शोध की आवश्यकता है। किन्तु यह तो तय है कि वेलि की रचनाकाल में आमूल-चूल परिवर्तन से इसके मूलस्वरूप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ने वाला।

कृति की विषय-वस्तु

राजस्थानी काव्य की अमृतम्राविणी वेलि विशुद्ध डिंगल का एक खण्डकाव्य है जिसमें कृष्ण और रुकमणी के प्रणय और विवाह की कथा का निबन्धन है। तेस्सीतोरि के वेलि संस्करण के अनुसार वेलि में लगभग 305 पद्य निबद्ध हैं जिनमें शृंगार रस प्रमुख है। प्रसंगवश सौंदर्य वर्णन, युद्ध वर्णन, प्रभात वर्णन और ऋतु वर्णन आदि अनेक प्रसंगों का वर्णन आये हैं। अपनी इस सर्वश्रेष्ठ कृति के पहले छन्द में महाकवि ने सर्वप्रथम मंगलाचारण के अंतर्गत परमेश्वर, सरस्वती, सद्गुरु और मंगलस्वरूप माधव का स्मरण किया है। कवि ने तदुपरान्त अपने असामर्थ्य और कथा की महत्ता का कलात्मक निरूपण करते हुए लिखा है कि वह गुणहीन होते हुए गुणनिधि का गान करना चाहता है मानों काष्ठचित्रित पुतली अपने हाथ से चित्रकार का चित्रण करना चाहती है, अथवा किसी वाग्हीन व्यक्ति ने वागेश्वरी सरस्वती को विजित करने के लिए विवाद प्रारम्भ किया है।⁸

'वेलि क्रिसन रुकमणी री' में कवि ने रुकमणी के कुटुम्ब के साथ स्वयं रुकमणी के शैशव, वयः संधि और यौवन का विशद् वर्णन किया है। जिसमें शृंगार की प्रमुखता है। दक्षिण दिशा में विदर्भ देश के कुंदनपुर नाम के नगर के राजा भीष्मक की पुत्री

रुक्मिणी थी। जिसका वर्णन पीथल ने वेलि के इस पद्य में दिया है -

रामा अवतार नाम ताइ रूक्मिणि, मान सरोवरि मेरुगिरी
बाळकति करि हंस चौ बालक, कनकवेलि बिहुँ पान किरि॥

रुक्मिणी लक्ष्मी का अवतार थी। बालिका रुक्मिणी ऐसी शोभायमान थी जैसे मानसरोवर में हंस का बच्चा क्रीडारत हो अथवा सुमेरू पर छोटी सी नवजात लता।

राजति राजकुँअरि राय अंगण
उडीयण वीरज अम्ब हरि।

कवि ने उसे आकाश में चन्द्रमा एवं उसकी सखियों को तारों की संज्ञा देते हुए उसकी शोभा को और बढ़ा दिया है।

वह अनेक समवयस्का सखियों के साथ राजमहल के आंगन में गुड़िया से खेलती थी। धीरे-धीरे बचपन बीत गया और यौवन का आगमन हुआ। उसके मुख पर ललाई प्रकट हुई, पयोधर अंकुरित हो चले, चित्त में एक नयी हलचल जागी। लज्जा ने जन्म लिया। वह ऐसी लजीली थी कि उसे लज्जा करते भी लज्जा आती थी। शरीर प्रफुल्लित हो उठा। नेत्र खिले खिले थे। स्वर कोयल की भांति मधुर हो गया और शरीर रूपी सरोवर में यौवन रूपी जल वेग से लहराने लगा। रुक्मिणी के अनेक शास्त्रों के ज्ञान एवं चौंसठ कलाओं में निपुणता को कवि ने उद्धृत किया है। श्रीकृष्ण के गुणों से प्रभावित होकर उनकी ओर रुक्मिणी का आकर्षण तथा उन्हें पति के रूप में पाने की कामना को पूर्ण करने के लिए शिव गौरी की पूजा का सुन्दर उदाहरण इस प्रकार है -

सांभळि अनुराग थयो मन स्यामा, वर प्रापति वंछती वर।
हरि गुण भणि, ऊपनी जिंका हर, हर तिणि वंदे गावरि हर॥⁹

इसके अतिरिक्त वेलि में महाकवि ने रुक्मिणी के भ्राता द्वारा उसका विवाह शिशुपाल से करने की कामना, रुक्मिणी द्वारा ब्राह्मण के हाथों श्रीकृष्ण को पत्र भेजना, जन्म-जन्मान्तर के संबंधों को स्मरण करवाना, कृष्ण का आकाश मार्ग से आगमन, रुक्मिणी का कृष्ण द्वारा हरण, श्रीकृष्ण से रुक्मी (रुक्मिणी का भाई) का युद्ध वर्णन और कृष्ण रुक्मिणी के प्रथम रात्रि मिलन आदि घटनाओं का बड़े ही सुन्दर एवं मर्यादित रूप से प्रस्तुत कर वेलि को एक अद्वितीय ग्रन्थ साबित कर दिया। कवि ने जो युद्ध वर्णन किया है, उसे वर्षा के साथ जोड़कर जो अनूठा प्रयोग किया है उससे कवि के सूक्ष्म बुद्धि व बहुज्ञता की झलक मिलती है -

कळकळिया कुन्त किरण कळि उकळि, वरजित विसिख
विवरजित वाउ

धडि-धडि धबकि धार धारूजल, उसिहरि-सिहरि सभखै सिळाइ॥

कवि ने भालों की तुलना सूर्य किरणों से कर उन्हें चमचमाता हुआ बताया है। बाणों के बंद होने एवं हर शरीर पर तलवार की धारें ऐसे ऐसे चमक रही हैं जैसे मानो शिखरों पर बिजलियाँ चमक रही हों।

वेलि में श्रीकृष्ण को एक आदर्श प्रेमी होने के साथ-साथ गरिमामय व्यक्तित्व, वीरता, शौर्य और साहस की मूरत के रूप में अंकित किया गया है। उन्हें अवतारी पुरुष मानकर उनका पात्र का अंकन किया गया है। जब राजा भीष्मक की सेना द्वारा मन्दिर का सारा प्रांगण भरा हुआ था, तब ऐसे समय में श्रीकृष्ण का रथ पर अकेले आकर रुक्मिणी का हरण करना उनके अद्भुत साहस, शौर्य, निर्भिकता का परिचय है। श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी के रूप सौंदर्य को इस भांति देखना कि मानों कोई निर्धन धन को लालायित दृष्टि से देख रहा हो, जिसके दर्शन कवि ने इस पद्य में कराए हैं -

अति प्रेरित रूप आंखियां अत्रिपत, माहव जद्यपि त्रिपत मन।
वार वार तिम करै विलोकन, धण मुख, जेही रंग धन।¹⁰

महाकवि राठौड़ ने इस वेलि में श्री कृष्ण का पात्रांकन एक आदर्श पति, कुशल शासक, व्यवस्थापक के रूप में प्रस्तुत किया है, जिनके राज्य में सारी प्रजा आनन्दित व निर्भय है।

रुक्मिणी एवं श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कवि ने शिशुपाल, बलराम, रुक्म, कृष्ण परिवार, रुक्मिणी परिवार, श्रृंगार रस, प्रकृति चित्रण, ऋतु वर्णन आदि का बड़े ही मनोहारी रूप से वर्णन किया है।

सारांशतः यह कहना उपयुक्त होगा कि वेलि अपने युग की अद्वितीय रचना है। इसमें मध्यकालीन समाज, संस्कृति, लोकाचार, और शिष्टाचार की अमूल्य सामग्री निहित है। वेलि की भाषा में डिंगल के ओज और माधुर्य के साथ-साथ संस्कृत के तत्सम् और तद्भव तथा देशज शब्दों की स्वाभाविकता दर्शनीय है। अतः वेलि का लालित्य भाषा, उक्तियों की विचित्रता, अलंकार, और मार्मिक स्पर्शता की दृष्टि से अनूठा है। भक्ति, श्रृंगार तथा वीरता के सुन्दर समन्वय के साथ-साथ कला पक्ष का पूर्ण रूप निर्वाह और भाव सौन्दर्य की चरम परिणिति ही इस काव्य की प्रधान विशेषता है।

सन्दर्भ सूची

- 1 साकरिया, आचार्य पं. बद्रीप्रसाद : मुहता नैणसी री ख्यात (संपादित), भाग तृतीय, पृ. 31
- 2 साकरिया, प्रो. भूपतिराम, पृथ्वीराज राठौड़ : व्यक्तित्व और कृतित्व, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1975, पृ. 3
- 3 रावत, सारस्वत, प्रीथीराज राठौड़, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1984, पृ. 27
- 4 मेनारिया, डॉ. मोतीलाल, राजस्थानी भाषा और साहित्य, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2011, पृ. 101 ; साकरिया, प्रो. भूपतिराम, पूर्वोक्त, पृ. 14-15
- 5 वेलि, छन्द संख्या 294, 279, 298
- 6 स्वामी, नरोत्तमदास, क्रिसन रूक्मिणि री वेलि, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1998, पृ. 33
- 7 विजयवर्गीय, डॉ. दयाकृष्ण, राजस्थानी काव्य में शृंगार भावना, चित्रगुप्त प्रकाशन, अजमेर, पृ. 16
- 8 रावत, सारस्वत, पूर्वोक्त, पृ. 45
- 9 मेनारिया, डॉ. पुरुषोत्तमलाल, पृथ्वीराज रासो व अन्य निबंध, राजस्थान प्रकाशन, जयपुर, 1969, पृ. 14
- 10 साकरिया, प्रो. भूपतिराम, पूर्वोक्त, पृ. 78
- 11 वेलि, छन्द संख्या 170